इकाई ४ भारत विश्व आर्थिक व्यवस्था में

इकाई की रूपरेखा

४.० उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ संरक्षण की राजनीति

४.३ वैश्विक व्यापार से विकास

४.४ भारत का वैश्वीकरण

४.५ उदारीकरण

४.६ भारत में उदारीकरण की उपलब्धियाँ

४.७ भारत में उदारीकरण की चुनौतियाँ

- ४.७.१ आंतरिक चुनौतियां
- ४.७.२ बाहरी चुनौतियां

४.८ सारांश

४.९ कुछ उपयोगी पुस्तकें

४.१० बोध प्रश्नों के मानक उत्तर

४.० उद्देश्य

इस अध्याय में भारतीय आर्थिक नीति से जुड़ी राजनीति की चर्चा की गई है। भारत ने आयात आधारित औद्योगीकरण की नीति को अपनाया था। इसके तहत माल के उत्पादन के लिए उनमें प्रयोग में आने वाले कच्चे माल का आयात करना होता है। भारी सीमा शुल्क और शुल्क के अलावा अन्य अवरोधों के चलते भारतीय बाजार सुरक्षित बना रहा। लेकिन १९९१ के बाद भारत निर्णायक तौर पर निर्यात आधारित विकास नीति की राह पर चल पड़ा। इस नीति के अंतर्गत भारतीय निर्यात को बढ़ावा दिए जाने के प्रयास किए गए और विदेशी माल के भारत में आने के रास्ते और आसान हो गए। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आपको निम्नलिखित प्रश्नों का वर्णन करने में सक्षम होना चाहिए:

- भारत में आयात आधारित औद्योगीकरण की नीति;
- विस्तार से बताएँ कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार से देशों को कैसे फायदा हुआ;
- विस्तार से बताएँ कि भारत ने १९९१ के बाद निर्यात संवर्द्धन की ओर क्यों कदम बढ़ाए;
- भारत में आर्थिक उदारीकरण के तत्वों का वर्णन करें; और
- वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी से पैदा हुई चुनौतियों की पहचान करें।

४.१ प्रस्तावना

आयात आधारित औद्योगीकरण (आईएसआई) की नीति को उन देशों ने अपनाया जिनका औपनिवेशिक अतीत था। आईएसआई की रणनीति इस तर्क पर आधारित थी कि इन देशों में उद्योग अभी भी

शैशवावस्था में हैं। यह माना गया कि भारतीय उद्योगपतियों के लिए देश के बाजार को बचाए रखना बहुत अनिवार्य है। इस तरह के संरक्षण के बगैर संभव था कि भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया सस्ते आयातों के कारण चौपट हो जाती। भारत सरकार के पास दो रास्ते थे। या तो वह विकास के लिए निर्यातों के रास्ते पर चलती, जिसमें वस्त्रा निर्यात को बढ़ावा देने जैसे कुछ कदम थे, अथवा आयात के रास्ते देश में ही माल उत्पादन के लिए कच्चे माल का आयात करती। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में दूसरे रास्ते को चुना गया। आईएसआई मॉडल से हालांकि औद्योगिक और तकनीकी आधार देश में काफी विस्तृत हुआ, लेकिन इसके साथ जल्द ही समस्याएं खड़ी होने लगीं जब आर्थिक विकास की दर ३.५ पर आकर स्थिर हो गई। विकास के आईएसआई मॉडल की सीमाओं ने भारत सरकार को निर्यात पर आधारित विकास के रास्ते को चुनने पर मजबूर कर दिया। प्रस्तुत अध्याय में इस बात की पड़ताल की गई है कि आईएसआई मॉडल की सीमाओं को पार करने के भारत सरकार के प्रयासों ने किस प्रकार से उसे निर्यात संवर्द्धन की नीतियों की ओर धकेल दिया। इन कदमों से किस प्रकार अर्थव्यवस्था में अनियमितताएँ पैदा हुईं तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकरण हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष प्रस्तुत चुनौतियों की भी इस अध्याय में जांच की गई है।

४.२ संरक्षण की राजनीति

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद अपनाई गई आईएसआई रणनीति का मुख्य उद्देश्य देसी बाजार को उच्च सीमा शुल्क के सहारे तैयार माल के लिए बचाना था। विनिमय की दर ऊँची बनाए रखने के कारण आयात सस्ता हो गया लेकिन निर्यात महंगा हो गया। मसलन, मान लें कि बाजार के मुताबिक विनिमय दर ५० रुपए बराबर एक डॉलर है, लेकिन भारत ने रुपए का मूल्य जानबूझ कर बढ़ाए रखने के लिए जो दर तय की वह थी १० रुपए बराबर एक डॉलर। ऐसी स्थिति में १०० डॉलर की एक मशीन का पहले मामले के अनुसार दाम होगा ५००० रुपए और दूसरी दर के मुताबिक दाम होगा सिर्फ १००० रुपए। यानी दूसरे मामले में डॉलर की तुलना में रुपए के मूल्यवर्द्धन के कारण मशीन का दाम काफी कम हो जाएगा, बनिस्बत पहले मामले के जहाँ रुपए का मूल्यांकन बाजार की दर से किया गया है। भारी मशीनरी का आयात भारत के लिए आवश्यक था चूंकि ये मशीने भारत में नहीं बन सकती थीं। विनिमय दर में रुपए के मजबूत होने के कारण इस किस्म के आयातों में फायदा हुआ। सस्ते आयातों की बाढ़ पर लगाम कसने के लिए आयात अनुज्ञप्तियों का उपयोग किया गया। जहां आयातित माल एक अनिवार्यता थे, वहां इस प्रणाली का उपयोग नहीं किया गया।

निजी उद्योगों को औद्योगिक लाइसेंसों द्वारा नियंत्रित किया जाने लगा। इस तरह से कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में जिन उद्योगपतियों के पास लाइसेंस थे वे ही माल का उत्पादन कर सकते थे। उदाहरण के तौर पर, अगर एक औद्योगिक घराने के पास कार निर्माण का लाइसेंस है, तो वह सिर्फ कार का ही उत्पादन कर सकता है। इससे भी कहीं आगे, विदेशों में जिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मुख्यालय था, उन्हें भारत में अपना काम शुरू करने के लिए हतोत्साहित किया गया।

इस व्यवस्था से ऐसी स्थिति आ गई जिसने भ्रष्टाचार और घूसखोरी को बढ़ावा दिया। इसे लगान वसूली का भी नाम दिया जाता है। बाजार की ताकतों के ठीक उलट सरकारी नियमों की वजह से संस्थानों को सरकारी पक्ष प्राप्त करने में बहुत खर्चा करना पड़ता। मसलन, यदि एक उद्योगपति किसी मशीन का आयात करना चाहता, तो उसे लाइसेंस की जरूरत पड़ती। अगर वह किसी वस्तु का उत्पादन करना वाहता तो उसे फिर से एक और लाइसेंस की जरूरत पड़ती। इन सभी लाइसेंसों को आसानी से प्राप्त करने का सबसे आसान तरीका किसी राजनीतिक दल, नेता या सरकारी मुलाजिम की खिदमत करना था। इस खुशामद में जो भी खर्च आता, उसका उपयोग अन्यथा अपने माल को बेहतर बनाने या सस्ता बनाने में लगाया जा सकता था। भारतीय अर्थव्यवस्था में अधिकांश धनराशि लगानों के रूप में बहा दी जा रही थी जिसका निवेश अगर माल की उत्पादकता में किया

जाता तो भारतीय माल विश्व बाजार को चुनौती दे सकता था। इस पूरी प्रक्रिया में संसाधनों का बँटवारा कुछ इस तरह होता कि नई दिल्ली के कई चक्कर लगाने के बाद वहां एक कार्यालय स्थापित करना होता, फिर अधिकारियों को पैसा खिलाना पड़ता। इसमें आने वाला खर्च लाइसेंस के आकार पर निर्भर करता। एक अध्ययन के मुताबिक भारत में सार्वजनिक निवेश, आयात, माल नियंत्राण, राशन प्रणाली और रेलवे से आने वाले लगान की कुल राशि १९६४ में करीब १५०० करोड़ थी।

सरकारी नियमों और नियंत्राण के कारण निजी संस्थानों को फायदा हुआ। सार्वजनिक क्षेत्रा की कंपनियों ने सरकारी अनुदान की मदद से निजी क्षेत्रा के लिए आवश्यकता की वस्तुएँ मुहैया करानी शुरू कर दीं। अगर सार्वजनिक क्षेत्रा इन वस्तुओं का उत्पादन नहीं करता, तो भी इनका आयात रुपए के बढ़े हुए मूल्य के आलोक में आयात अनुज्ञप्तियों की मदद से सस्ते में किया जा सकता था। भारतीय औद्योगिक वित्तीय निगम जैसी सरकारी वित्तीय संस्थाओं ने निजी क्षेत्रा के संस्थानों को भारी अनुदान दिया। कभी-कभार ऐसा हुआ कि कुछ प्रभावकारी औद्योगिक घरानों ने अपनी लाइसेंस क्षमता से ज्यादा उत्पादन किया, लेकिन सरकारी नियंत्राण रखने वाली एजेंसियों ने सामान्यत: इन पर ध्यान नहीं दिया। इन सभी कामों के लिए उद्योगपतियों से राजनीतिज्ञ और सरकारी अधिकारियों तक लगानों और घूसखोरी की एक लंबी श्रृंखला का होना जरूरी था।

भारत में संसदीय चुनावों के लिए आवश्यक धनराशि के लिए राजनेता घरेलू से लेकर विदेशी निगमों पर आश्रित हो गए। इससे राजनेताओं, नौकरशाही और उद्योगपतियों के बीच परस्पर आवश्यकता पर आधारित संबंध बनते चले गए। सरकार की ओर से मिलने वाली चुनाव के लिए आवश्यक धनराशि की सीमा बहुत कम होती है। हालांकि १९९६ के बाद राजनीतिक दलों ने करों पर रिटर्न दाखिल करना शुरू कर दिया, इसके बावजूद दिखाई गई राशि इतनी कम थी कि शंका पैदा होना जायज था। १९८० के बाद से सार्वजनिक क्षेत्रा और रक्षा उपकरणों के सौदे चुनाव अनुदानों का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन कर उभरे हैं। वर्तमान समय में रक्षा और इसी किस्म के अन्य क्षेत्राों तथा निजीकरण के क्षेत्रा जैसे दूरसंचार आदि राजनीतिक दलों के संसाधन जुटाने के महत्वपूर्ण स्रोत बन गए हैं।

भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाली आईएसआई रणनीति ने भारतीय उत्पादकता और प्रतियोगिता पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ा। एक अध्ययन के मुताबिक किसी अमुक क्षेत्रा में श्रमिकों और उद्योगों का घनत्व उस क्षेत्रा में संरक्षण को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सरकार ने दीवालिया हो चुकी ऐसी औद्योगिक इकाइयों को अनुदान दिया जो कभी मुनाफा कमाने की हालत में नहीं थीं। एक अध्ययन में पाया गया कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड द्वारा अनुदानित ऋणों के माध्यम से २३ में से १७ दीवालिया हो चुकी औद्योगिक इकाइयों को जबर्दस्ती जिंदा रखा गया। इन सभी कारकों ने भारत की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। विश्व मानकों पर भारतीय माल की गुणवत्ता कम रही और दाम तुलनात्मक रूप से अधिक थे। सभी विकासशील देशों के बीच उत्पाद निर्यात में भारत की हिस्सेदारी १९६२ में २२.१ फीसदी से घट कर १९९० में ३.४ फीसदी पर आ गई। दुनिया के पैमाने पर यह हिस्सेदारी १९६२ में ०.८४ फीसदी की तुलना में गिर कर १९९१ में ०.५४ फीसदी ही रह गई।

१९८० में आर्थिक विकास की दर कम रहने, चुनाव में हुई हार और व्यापार में चीन की सफलता के मद्देनजर प्रधानमंत्राी इंदिरा गांधी को निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता महसूस हुई। भारत के विकास के लिए निर्यात को बढ़ावा देने संबंधी सरकार ने कई कमेटियों का गठन किया। लेकिन औद्योगिक रुचियों के मुताबिक आईएसआई ही अभी भी बेहतर विकल्प बना हुआ था। भारतीय वाणिज्य और उद्योग परिसंघ (फिक्की) ने आवश्यक वस्तुओं जैसे अखबारी कागज, सीमेंट और कॉस्टिक सोडा पर शुल्क कम कर दिया लेकिन वह अभी भी नवस्थापित मुक्त व्यापार क्षेत्राों में सौ फीसदी निर्यात आधारित इकाइयों के पक्ष में तैयार नहीं हो सका था। घरेलू उपभोग के लिए निम्न गुणवत्ता वाले उत्पादों को तैयार करने वाले उद्योगों का अंतरराष्ट्रीय ब्रांडों के समतुल्य उत्पादन करने वाली इकाइयों में परिवर्तन बहुत कठिन था।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने १९८४ में सत्ता में आते ही सरकारी नियंत्राण के खिलाफ संघर्ष करने का निर्णय लिया। कड़े राजनीतिक विरोध के कारण उनके द्वारा चलाई गई आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को बहुत कम सफलता मिल सकी। हालांकि इससे एक फायदा हुआ कि नौकरशाही और राजनेताओं का एक तबका इस बात से सहमत हो गया कि नीतियों में परिवर्तन की जरूरत है। राजीव गांधी ने मोंटेक सिंह अहलुवालिया को विश्व बैंक से प्रधानमंत्री कार्यालय बुला लिया। १९९० में अहलुवालिया ने एक पर्चा पेश किया जिसमें भारतीय निर्यातों को प्रतियोगी बनाने और भारतीय उपभोक्ताओं की स्थिति सुधारने के लिए सीमा शुल्क घटाने, विदेशी निवेश के निशुल्क प्रवेश और कई कदमों के पक्ष में तर्क दिया गया था। भारत को अब नीतियों में परिवर्तन करने के लिए राजनीतिक अवरोधों को दूर करने के रास्ते खोजने थे।

४.३ वैश्विक व्यापार से विकास

१९४७ में भारत से भी पिछड़े कई पूर्वी एशियाई देश अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अपनी हिस्सेदारी कर भारत से भी तेज विकास कर रहे थे जिससे उनके नागरिकों के जीवनस्तर में सुधार आ रहा था। तुलनात्मक तौर पर छोटे दक्षिण कोरिया और ताइवान पूर्वी एशिया में आयात आधारित नीतियां छोड़ कर व्यापार संवर्द्धन नीतियों को लागू करने में अगुवा रहे। इन देशों के बाजारों का आकार भारत की तुलना में बहुत छोटा था इसलिए उसका दोहन करके वे व्यापार को आगे बढ़ा सकने में अक्षम थे। इसीलिए ये देश अपने उत्पादों की बिक्री के लिए विदेशी बाजार पर बहुत ज्यादा निर्भर थे। दक्षिण कोरिया ने बड़े निगमों को बढ़ावा देने का जापान का रास्ता अपनाया जिससे उसके अंतरराष्ट्रीय व्यापार में काफी इजाफा हुआं। ताइवान ने छोटे उद्यमों को बढ़ावा दिया। दोनों देशों की व्यापार पर निर्भरता बहुत बढ़ गई और यहां विकास की दर में आश्चर्यजनक बढ़ोतरी हुई। एक ओर जहां भारत १९७० के दशक में ३.५ फीसदी की सालाना दर से बढ़ रहा था वहीं इन देशों ने सालाना सात फीसदी की विकास दर अर्जित की।

चीन इस मामले में सबसे बड़ा आश्चर्य रहा। चीन और सोवियत संघ उन दो साम्यवादी देशों में से थे जिनकी विकास नीति खासकर पूंजीवादी विश्व के बरक्स पूरी तरह व्यापार के विरोध में खड़ी थी। लेकिन १९७० के अंत तक चीन के लिए इन नीतियों में परिवर्तन आया। चीन ने इस तथ्य को महसूस किया कि उसने ताइवान और दक्षिण कोरिया की तरह निर्यात संवर्द्धन के माध्यम से बाजार का दोहन करने की बजाय यह दशक गंवा दिया है। इसके बाद से चीन की विकास नीति भी वैश्विक हो चली। चीन ने अब भारी मात्राा में निर्यात आधारित विदेशी निवेशों को आकर्षित किया और पश्चिमी बाजारों के लिए उसने निम्न तकनीक वाले उत्पादों का निर्यात चालू कर दिया। इस विकास नीति की मदद से चीन में विकास दर काफी लंबे समय से सात फीसदी पर ही बनी हुई है और उसने अमेरिका के साथ काफी व्यापार कर मुनाफा कमाया है।

१९९१ में सोवियत संघ के पतन और १९८० के दशक में लातिन अमेरिकी देशों पर ऋण संकट ने विकास के एक वैकल्पिक रास्ते के रूप में वैश्विक व्यापार के तर्क को और मजबूती दी। अमेरिका को पूरी दुनिया में सैन्य चुनौती देने की क्षमता रखने वाले इकलौते देश सोवियत संघ ने विकास के एक सशक्त मॉडल के रूप में आईएसआई के औचित्य को स्थापित किया था। १९८० के दशक में गंभीर आर्थिक समस्याओं के कारण सोवियत संघ के पतन ने आईएसआई मॉडल में देशों की रुचि को कम कर दिया। लातिन अमेरिकी देशों ने आईएसआई के एक विभिन्न संस्करण को अपनाया था। इन्हीं नीतियों के कारण इन देशों को भारी मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा और इनके सामने ऋण का संकट खड़ा हो गया। आईएसआई मॉडल में घटती रुचि और विश्व मुद्रा कोश के इन देशों पर अपनी अर्थव्यवस्थाओं को खोलने के दबाव के चलते कई लातिन अमेरिकी देशों का झुकाव व्यापार की तरफ बढ़ने लगा।

४.४ भारत का वैश्वीकरण

१९९१ में भारत ने आईएसआई से अपने कदम व्यापार आधारित विकास की ओर बढ़ाए। कार्यपालिका ने १९९१ के ऋण संकट का हवाला देकर आर्थिक नीतियों में व्यापार समर्थक सुधारों को अंजाम दिया। कांग्रेस पार्टी के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव और वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने इस नीतिगत संक्रमण की आर्थिक रणनीति को आकार दिया। उन्होंने भारत की व्यापार, औद्योगिक और वित्तीय नीतियों में परिवर्तन की लहर उस वक्त चलाई जब उदारीकरण के प्रति उद्योगों का प्रतिरोध न्यूनतम था। खाड़ी युद्ध के कारण तेल की कीमतों में अस्थायी उछाल आ गया था। सरकारी व्यय उससे कहीं ज्यादा था जितना कि सरकार वहन कर सकती थी। इन्हीं सब कारकों का परिणाम यह हुआ कि भारत का विदेशी मुद्रा भंडार खाली होने के कगार पर आ गया। १९९० के शुरुआती दशक में भारत के पास सिर्फ दो सप्ताह के लिए आयात किए जा सकने लायक संसाधन शेष थे।

भारत में बगैर आयात के उद्योग अपने काम को आगे बढ़ाने में अक्षम थे। आईएसआई के लिए अनिवार्य तात्कालिक माल आपूर्ति के लिए उन्हें विश्व मुद्रा कोष के संसाधनों की मदद की दरकार थी। भारतीय उद्योगों ने विदेशी निगमों को भी हलके में लिया और औद्योगिक अनुज्ञप्ति में अनियमितताओं का आकलन बढ़ा-चढ़ा कर किया। इसका नतीजा यह हुआ कि १९९१ से १९९३ के बीच उदारीकरण को भारतीय उद्योगों का भारी समर्थन हासिल हुआ। भारतीय उद्योगों द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश का विरोध और व्यापार के लिए समान अवसरों की मांग की बात १९९३ में उठी। लेकिन तब तक महत्वपूर्ण व्यापार संवर्द्धन नीतियों को लागू कर दिया गया था। मजदूर संगठनों ने अक्षम श्रमिकों की आसानी से छंटनी किए जाने संबंधित विश्व मुद्रा कोष द्वारा प्रवर्तित नीति का सफलतापूर्वक विरोध किया, चूंकि यही श्रमिक औद्योगिक पुनर्संरचना के सूत्राधार हैं। उन्होंने लेकिन आयातों के उदारीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश तथा उद्योगों में लाइसेंस खत्म करने का विरोध नहीं किया।

व्यापार समर्थक कार्यपालिका इस अवसर का फायदा उठाते हुए आईएसआई की राजनीति का भी अतिक्रमण कर गई। डॉ. सिंह के १९९१ में दिए गए बजट अभिभाषण में स्पष्ट तौर पर निवेशों की कम उत्पादकता का जिक्र है जिससे सरकार को बजट और व्यापार में काफी घाटा उठाना पड़ा। एक ओर डॉ. सिंह ने आर्थिक प्रबंधन की कमान अपने हाथ में ली, वहीं प्रधानमंत्री राव ने राजनीतिक परिस्थितियों को बड़ी सक्षमता से नियंत्राण में रखा। इन दोनों के नेतृत्व में भारत का तमाम आर्थिक परिवर्तनों से साक्षात्कार हुआ। इनमें सीमा शुल्क में महत्वपूर्ण कटौती, विदेशी संस्थानों और व्यक्तियों द्वारा निवेश को प्रोत्साहन, उद्योगों में लाइसेंस व्यवस्था की समाप्ति, रुपए का अवमूल्यन और चालू खाते पर रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता आदि शामिल थे।

व्यापार समर्थित नीतियों को भारतीय जनता पार्टी ने भी आगे ही बढ़ाया जो १९९६ में सत्ता में आई। भाजपा की अराजनीतिक, विचारधारात्मक और सांस्कृतिक संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काडरों के आने से उम्मीद की गई कि अर्थव्यवस्था में व्यापार समर्थक रूझान का अब खात्मा होगा। चूंकि वे स्वदेशी यानी आर्थिक प्रबंधन के लिए स्वदेशी सिद्धांतों के प्रवर्तक थे १९९८ में पेश किए गए बजट में आईएसआई की ओर हलकी वापसी के संकेतों से इन आशंकाओं को बल मिला। हालांकि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और स्वदेशी जागरण मंच जैसे स्वदेशी का प्रचार करने वाले संगठनों के खिलाफ जाते हुए भाजपा के उदार चेहरे का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने आर्थिक उदारीकरण की गति को यथावत बनाए रखा।

१९९८ के बजट के बाद पोकरण परमाणु विस्फोट के आलोक में तीन राज्यों के विधानसभा चुनावों में भाजपा की हार ने आईएसआई के समर्थकों को निराश करने का काम किया। जसवंत सिंह को विदेश मंत्री बनाए जाने का कदम प्रधानमंत्री वाजपेयी की उदार छवि का ही परिचायक था। १९९८ में राजनीतिक झटके के बाद यशवंत सिन्हा इस बात से सहमत हो गए कि देश के विकास के लिए व्यापार आधारित आर्थिक प्रणाली की ही आवश्यकता है। वित्त मंत्री जसवंत सिंह द्वारा पेश किए

गए २००३-०४ के आम बजट में व्यापार समर्थक नीतियों की ही झलक मिली। नीतिगत स्तर पर भाजपा की उपलब्धियों में सभी मात्राात्मक प्रतिबंधों का हटाया जाना, बीमा और दूरसंचार के क्षेत्रा का अनियमित किया जाना, आयात शुल्क में कटौती और सार्वजनिक क्षेत्रा की इकाइयों के विनिवेश की शुरुआत को गिनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न १

नोट : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग करें।

ख) अध्याय के अंत में दिए गए मानक उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

१) भारत में आयात आधारित औद्योगीकरण (आईएसआई) की व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

२) आईएसआई से भारत की प्रतिद्वंद्विता को कैसे नुकसान हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

३) भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था से एकीकरण कैसे हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

४.५ उदारीकरण

१९९१ के बाद भारत की आर्थिक नीति में उदारीकरण को लागू कर दिया गया। उदारीकरण का सामान्य अर्थ सरकारी हस्तक्षेप को कम करना तथा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाजार की ताकतों को खेलने के लिए और अधिक आजादी मुहैया कराना है। इस खंड में औद्योगिक नीति, शुल्क

कटौती, मात्रात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति और चालू खाते पर रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता के संदर्भ में हुए परिवर्तनों के बारे में चर्चा की गई है। भारत ने ई-कॉमर्स और सेवाओं के मामले में भी उदारीकरण को लागू किया। विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पोर्टफोलियो निवेश, और उद्यमी पूंजी में भी उदारीकरण लागू किया गया।

औद्योगिक लाइसेंस

उद्योगों में लाइसेंस राज को समाप्त कर नीति निर्माताओं ने रिश्वतखोरी के अवसरों को ही समाप्त कर दिया। औद्योगिक अनुज्ञप्तियां यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई थीं कि सरकार यह तय करे कि भारत जैसे बड़े घरेलू बाजार के लिए कौन सी कंपनी कौन से माल का उत्पादन कितनी मात्रा में करेगी। घरेलू उत्पादकों की रुचि लाइसेंस प्राप्त कर अपनी उत्पादक क्षमताओं को बढ़ाने में भी थी। यह दोनों ही काम राजनेताओं और सरकारी अफसरों को रिश्वत खिला कर निकाले जा सकते थे। भारतीय औद्योगिक उत्पादन में नयापन और दक्षता नहीं थी, चूंकि अफसर और नेता लगान वसूली कर बाजार से अपना फायदा निकालते थे।

शुल्क, कोटा और रुपए की परिवर्तनीयता

भारत ने विश्व व्यापार संगठन द्वारा तय की गई सीमा से दो साल पहले ही ३१ मार्च २००१ को सभी मात्रात्मक प्रतिबंध समाप्त कर दिए। भारतीय व्यापार नीति में यह एक महत्वपूर्ण घटना है। मात्रात्मक प्रतिबंधों के तहत किसी अमुक देश के साथ व्यापार के लिए एक निश्चित मात्रा तय होती है चाहे मांग कितनी भी रहे। अगर जापान से फोटोकॉपी मशीनों के भारत निर्यात पर १००० मशीनों का मात्रात्मक प्रतिबंध लागू है, तो भारतीय कुल मिला कर सिर्फ १००० फोटोकॉपी मशीन ही जापान से खरीद सकते हैं। विश्व व्यापार संगठन की विवाद निपटारा कार्रवाई में अमेरिका ने भारत के मात्रात्मक प्रतिबंधों को सफलतापूर्वक चुनौती दी थी। दिसंबर १९९८ में भारत की इस मामले में हार हुई और अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के चलते भारत को घरेलू बाजार में सुधारों को लागू करना पड़ा। मात्रात्मक प्रतिबंधों के हटाए जाने से भारत में खुदरा व्यापार में भारी बढ़ोतरी होगी। ए.टी. केर्नी का अनुमान था कि इससे भारत में खुदरा व्यापार का संगठित बाजार ३७ अरब डॉलर का होगा।

भारतीय शुल्क में अचानक भारी कटौती की गई। भारतीय उद्योगपति अभी तक अपने माल की कम गुणवत्ता और उत्पादकता से बचाव के लिए उच्च सीमा शुल्क पर निर्भर थे। औसतन देखा जाए तो १९९०-९१ में सामान्य शुल्क १२५ फीसदी से गिरकर १९९७-९८ में ३५ फीसदी पर पहुंच गया। इसी अवधि के दौरान आयात शुल्क ८७ फीसदी से गिर कर ३० फीसदी पर पहुंच गया। भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी समझौते पर दस्तखत किए हैं जिसके मुताबिक २००५ तक सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े उपकरणों पर शुल्क समाप्त हो जाएगा।

१९९५ में भारत ने अमेरिका और यूरोपीय संघ के साथ वस्त्रा व्यापार से संबंधित समझौते पर दस्तखत किए। इस तरीके से प्रतिबंधों की सूची में से फाइबर, यार्न और औद्योगिक वस्त्रों को हटा दिया गया। २००५ तक अधिकतर अमेरिकी और यूरोपीय वस्त्रा निर्यातकों को भारत में निशुल्क प्रवेश मिल जाएगा। बदले में अमेरिका इस बात के लिए तैयार हो गया कि वह भारतीय उत्पादों को अपने बाजार में और ज्यादा पहुंच की सुविधा देगा और २००५ तक कोटा प्रणाली समाप्त कर देगा। यूरोपीय संघ इस बात से सहमत हो गया कि वह भारतीय हथकरघा उत्पादों पर से सारे प्रतिबंध हटा लेगा और अपने कोटे में ३ अरब राशि की बढ़ोतरी करेगा तथा २००४ तक कोटा प्रणाली समाप्त कर देगा।

विदेशी मुद्रा पर नियंत्राण में अब थोड़ी छूट दी गई। १९९१ के बाद चालू खातों पर रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता को धीरे-धीरे अनुमति दी गई और यह प्रक्रिया १९९४ तक पूर्ण हो गई। अब रुपए और डॉलर के बीच विनिमय दर को अमूमन बाजार ही तय करता है। पहले, भारतीय उद्योगपति विनिमय की मूल्यवर्द्धित दर पर निर्भर थे। इससे उन्हें कच्चे माल का आयात सस्ता पड़ता लेकिन वे आयात लाइसेंस और भारत सरकार द्वारा अनुदान में दी जाने वाली विदेशी मुद्रा पर बहुत ज्यादा निर्भर रहते थे। १९९४ के बाद अधिकांशत: बाजार द्वारा नियंत्रित रुपए की विनिमय दर के कारण

आयात महंगे हो गए और निर्यात सस्ते हो गए। विनिमय दर के अवमूल्यन से भारतीय निर्यातों की प्रतिद्वंद्विता में बढ़ोतरी हो गई।

भारत में विदेशी निवेश से रोजगार सृजन हो सकता है, प्रौद्योगिकी तक पहुंच बनेगी और उत्पादों की गुणवत्ता में बढ़ोतरी होती। १९९० के दशक में अमेरिका में कम ब्याज दरों की वजह से उभरते हुए बाजारों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश औसतन १९८५-९० के दौरान १४२ अरब डॉलर सालाना से दोगुना होकर १९९६ में ३५० अरब डॉलर सालाना पर पहुंच गया। १९९० के दशक में सरकार के विदेशी निवेश के प्रति रवैये में बदलाव के चलते भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों की आमद शुरू हो गई। भारत में विदेशी निवेशों के उदारीकरण के लिए १९७३ के विदेशी मुद्रा नियमन कानून में संशोधन किया गया। ४८ क्षेत्रों में ५१ फीसदी तक विदेशी हिस्सेदारी को अपने आप मंजूरी देने का प्रावधान बनाया गया। कई क्षेत्रों में तो ७४ फीसदी विदेशी हिस्सेदारी की मंजूरी दे दी गई और ढांचागत क्षेत्रों जैसे बंदरगाह और सड़कों के मामले में १०० फीसदी हिस्सेदारी की अनुमति दे दी गई। बीमा क्षेत्रा, बैंकिंग, दूरसंचार और नागरिक उड्डयन को विदेशी निवेशों के लिए खोल दिया गया। भारत ने इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और मलयेशिया जैसे देशों के साथ द्विपक्षीय संधियों पर दस्तखत किए हैं। साथ ही उसने अमेरिका के साथ डबल टैक्सेशन संधि को भी मंजूरी दी है। १९९२ से भारत को विश्व बैंक बहुपक्षीय निवेश प्रत्याभूति एजेंसी की सदस्यता मिल गई।

वित्त मंत्राी यशवंत सिन्हा ने सिलिकॉन वैली से भारत के तार जोड़ने के उद्देश्य से उद्यमी पूंजी पर लगने वाले कर को उदार बनाया। वाणिज्यिक विकास की आरंभिक अवस्था में युवा उद्यमियों को बगैर कोई मुनाफा कमाए वित्तीय और ढांचागत मदद देने का प्रावधान किया गया। २००१ के बजट के बाद उद्यमी पूंजी को सेबी की मंजूरी दिए जाने की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया।

सॉफ्टवेयर के क्षेत्रा में बढ़ती प्रतिद्वंद्विता के कारण भारतीय कंपनियों को विदेशी अनुदान लेने और विदेशी परिसंपत्तियों के अधिग्रहण संबंधी प्रक्रिया को आसान किया गया। भारत सरकार ने भारतीय कंपनियों को अमेरिकन डिपोजिटरी रिसीप्ट और ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीप्ट से अपने संसाधन जुटाने की पूरी छूट दी हुई है। इन कंपनियों को छूट है कि ये विदेशी कंपनियों के अधिग्रहण में जुटाए गए संसाधनों के ५० फीसदी हिस्से का इस्तेमाल कर सकें।

पोर्टफोलियो में निवेश की नीति को उदारीकृत किया गया। पोर्टफोलियो में निवेश का संबंध अमीर देशों के उन अनुदान प्रबंधकों के निवेश से है जो मुनाफा कमाने के लिए अमीर देशों के नागरिकों की बचत का दुनिया भर में निवेश करते हैं। २००० से पहले विदेशी संस्थागत निवेशकों को छूट थी कि वे किसी भी भारतीय कंपनी की २४ फीसदी हिस्सेदारी में निवेश कर सकें। इसे ३० फीसदी की सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि कंपनी के निदेशक बोर्ड की इसे अनुमति प्राप्त हो तथा कंपनी की जीबीएम में इससे संबंधित एक प्रस्ताव पारित किया जाए। २००१ के आम बजट में पोर्टफोलियो निवेश में हिस्सेदारी की सीमा को ४० फीसदी तक रखा गया, बशर्ते उसे कंपनी के निदेशक बोर्ड की मंजूरी प्राप्त हो।

सितंबर २००१ में रिजर्व बैंक ने एक प्रावधान किया जिसके तहत किसी भी क्षेत्रा में विदेशी संस्थागत निवेशक की हिस्सेदारी की सीमा उतनी ही रहेगी जितनी कि उस क्षेत्रा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा है। किसी भी कंपनी में २४ फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी के लिए कंपनी के निदेशक बोर्ड की मंजूरी अनिवार्य है। इसका अर्थ यह है कि विदेशी संस्थागत निवेशक ऊर्जा, पेट्रोलियम, दवाओं, सॉफ्टवेयर और होटल के क्षेत्रा में सिद्धांतत: १०० फीसदी तक निवेश कर सकते हैं।

४.६ भारत में उदारीकरण की उपलब्धियाँ

भारत में उदारीकरण के परिणाम काफी प्रभावकारी रहे हैं। १९९३ से २००० के बीच औसतन छह की सालाना विकास दर के हिसाब से भारत दुनिया में सबसे तेजी से विकास करने वाली

अर्थव्यवस्थाओं में एक रहा है। मुद्रास्फीति को पांच फीसदी से नीचे नियंत्रित रखा गया। पिछले दशक के अंत तक भारत का विदेशी मुद्रा भंडार तकरीबन ४० अरब डॉलर था जो अगले नौ महीने तक आयात का बोझ उठाने में सक्षम था। ऐसी स्थिति कम से कम खाड़ी युद्ध के समय तेल के दामों में आए उछाल को झेलने में पर्याप्त सक्षम थी।

भारत एक प्रमुख सॉफ्टवेयर निर्माता और विश्व के अग्रणी आउटसोर्सिंग के ठिकाने के रूप में उभर रहा था। विदेशी कंपनियों ने भारत में शोध और विकास के कार्यो के लिए उपलब्ध सस्ते और तकनीकी रूप से दक्ष श्रम का फायदा उठाया। १९८० के दशक की तुलना में १९९० के दशक में भारत से आभूषण और मणिकों के निर्यात में भारी तेजी आई। भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में आभूषणों ने अपना विशिष्ट स्थान बनाए रखा।

विदेशी निवेश

तालिका १: भारत में विदेशी निवेश
(अरब डॉलर में कुल राशि)

	१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५	१९९६	१९९७	१९९८	१९९९	२०००
निवेश										
प्रत्यक्ष	०.०७३	०.२७६	०.५५०	०.९७३	२.१४३	२.४२६	३.५७७	२.६३४	२.१६८	२.३१५
पोर्टफोलियो	०.००४	०.२८३	१.३६९	५.४९१	१.५९०	३.५९८	२.५५५	-०.६०१	२.३१७	१.६१९
कुल	०.७७४	०.५५९	१.९१९	६.४६४	३.७३३	६.०२	६.१३२	२.०३३	४.४८५	३.९२४

उदारीकृत सत्ता को विदेशी निवेशों की ओर से अनुकूल जवाब मिला। १९९० में विदेशी निवेश का कुल योग करीब दो अरब डॉलर था। १९९७-९८ में आए ६.१ अरब डॉलर के विदेशी निवेश से ६.५ अरब डॉलर के विदेशी मुद्रा कोष के घाटे की भरपाई संभव हो सकी। १९९० के शुरुआती दशक में धन की आमद अधिकांशत: पोर्टफोलियों निवेश के माध्यम से ही हुई थी। १९९५ के बाद प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को रफ्तार मिली। पूर्वी एशिया में आर्थिक संकट के दौरान जब पोर्टफोलियो निवेश कमजोर पड़ने लगा, तो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में तेजी आई और पोर्टफोलियो निवेश एक बार फिर से उभरा।

पूर्वी एशियाई देशों की पूंजी को आकर्षित करने की क्षमता की तुलना में भारत की सफलता बहुत फीकी है। १९९६ में विदेशी निवेश के माध्यम से विकासशील देशों की कुल आय १३० अरब डॉलर रही। इसमें अकेले चीन की हिस्सेदारी ४२ डॉलर अरब की थी। चीन की कुल पूंजी के निर्माण में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से आए धन का योगदान २५ फीसदी है जबकि भारत के मामले में यह पांच फीसदी से भी कम है। तुलनात्मक तौर पर देखा जाए तो भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से आने वाली धनराशि सालाना दो से तीन अरब डॉलर है। इससे भी बड़ी बात यह है कि भारत में जितने प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों को मंजूरी मिली है, उनमें से मात्रा २० फीसदी से ही वास्तविक आय हुई है।

आईएसआई द्वारा तैयार किए औद्योगिक और तकनीकी आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को खोलने और उसके वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकरण ने भारत को दुनिया में एक सशक्त आर्थिक ताकत का रूप दे दिया। विश्व मुद्रा कोष के मुताबिक भारत आज दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर दुनिया में दूसरी और तीसरे स्थान पर आती है। खासकर सूचना प्रौद्योगिकी, दूरसंचार, और बिजनेस प्रॉसेस आउटसोर्सिंग में यह विकास दर काफी तेज रही है। गोल्डमैन सैश की एक रिपोर्ट (ड्रीमिंग विद बीआरआईसी: दि पाथ टु २०५०) के मुताबिक ब्राजील, रूस, भारत और चीन के बीच भारत अगले तीस से पचास वर्षों के दौरान सबसे तेजी से विकास करेगा। ऐसा वह अपनी जनांकिकीय अवस्थिति और निरंतर विकास के माध्यम से करेगा।

वर्तमान विकास दर के मुताबिक भारत में धीरे-धीरे बुर्जुआ होता बाजार खुद में हर वर्ष एक ऑस्ट्रेलिया को पैदा करेगा और प्रत्येक साढ़े तीन वर्ष में एक फ्रांस पैदा करेगा। वैश्विक व्यापार में भले ही भारत की हिस्सेदारी तुलनात्मक तौर पर बहुत कम हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह प्रगति के रास्ते पर नहीं है।

४.७ भारत में उदारीकरण की चुनौतियाँ

४.७.१ आंतरिक चुनौतियाँ

उदारीकरण के सामने प्रमुख घरेलू चुनौतियां अभी भी बरकरार हैं। व्यापार और प्रतियोगिता देश में ढांचागत अवयवों जैसे सड़क, बंदरगाह और ऊर्जा की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। भारत इन सभी मामलों में अभी भी बहुत गरीब है। भारत में श्रम कानूनों ने उत्पादन क्षेत्रा पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला है। भारत में राजकोषीय घाटा और ब्याज दरों पर उसके प्रभाव का ढांचागत तथा अन्य क्षेत्राों में निवेश पर बहुत बुरा असर पड़ सकता है। १९८० के दशक की तुलना में भारत के राज्यों के बीच १९९० के दशक बाद से आर्थिक संदर्भों में असमानता बढ़ी है।

उत्पादन में प्रतिद्वंद्विता

बाजारवादी रूझान का अधिक से अधिक फायदा उठाने के लिए यह जरूरी है कि बाजारों को आपस में अच्छे तरीके से जोड़ा जाए। भारत में सड़कों, हवाई अड्डों और बंदरगाहों को नवीनीकरण तथा विस्तारीकरण की सख्त दरकार है। दूसरे, बिजली की दुर्व्यवस्था और खराब गुणवत्ता के कारण उत्पादन क्षेत्रा को घाटा उठाना पड़ता है। भारत को ऊर्जा निर्माण की क्षमता बढ़ा कर दस लाख मेगावाट करने की आवश्यकता है। सरकार द्वारा बिजली की खराब आपूर्ति से निराश बड़े औद्योगिक घरानों ने खुद ही ऊर्जा का उत्पादन आरंभ कर दिया है जिससे उनकी जरूरतें पूरी हो सकें। बिजली की चोरी जोरों पर है और यह निशुल्क मिलती है। इसका भुगतान सरकार खुद करदाताओं की जेबों से करती है। इससे उन लोगों के लिए ऊर्जा के उत्पादन की गुणवत्ता और मात्राा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो उसके बदले में शुल्क देने को तैयार हैं। एक स्वतंत्रा और सशक्त नियामक संस्था के गठन की मदद से ऊर्जा के उत्पादन और वितरण में राजनीतिक हस्तक्षेप को कम करने का सवाल अभी भी प्रासंगिक और मजबूत है।

तीसरा, भारत में जो श्रम कानून हैं, उनके मुताबिक संगठित क्षेत्रा में किसी भी श्रमिक की छंटनी आज के हालात में भी बहुत कठिन कार्य है। भारत में मजदूर संगठन देश के दक्ष और प्रशिक्षित श्रमिकों के करीब ८.५ फीसदी का प्रतिनिधित्व करते हैं। असंगठित क्षेत्रा में काम करने वाले नब्बे फीसदी से अधिक श्रमिकों का रोजगार सुरक्षित नहीं है। रोजगार की सुरक्षा का सीधा संबंध संस्था के आकार से है। १९९१ के बाद लागू आर्थिक उदारीकरण अभी तक कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के रोजगारों की सुरक्षा पर कुठाराघात नहीं कर सका है। इन्हीं कुछ अल्पसंख्यक श्रमिकों के रोजगार सुरक्षित होने की वजह से उत्पादन के क्षेत्रा में उत्पादन की दर बहुत कम होकर रह गई है। इसने निर्यात आधारित उत्पादन क्षेत्रा में घरेलू के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय निवेश को भी प्रतिकूल तरीके से प्रभावित किया है।

केंद्र और राज्यों के राजकोषीय घाटे को मिला दिया जाए तो कुल घाटा सकल घरेलू उत्पाद का करीब १० से ११ फीसदी बैठता है। यह खतरे की घंटी है। सरकार द्वारा अर्जित कर और पूंजीगत अनुदानों के योग में से सरकारी खर्चे को निकाल देने से राजकोषीय घाटे का आकलन होता है। १९९२-९३ से यह घाटा लगातार बढ़ता ही जा रहा है। इससे ऋण की मात्राा बढ़ सकती है, ब्याज भुगतानों में बढ़ोतरी संभव है और स्वास्थ्य, शिक्षा तथा ढाँचागत क्षेत्राों के विकास के लिए मुहैया कराई जाने वाली राशि में भारी गिरावट आने की संभावना बन सकती है। यह एक खतरनाक दुश्चक्र का रूप ले सकता है। भौतिक और मानवीय संसाधनों पर सरकारी खर्चे में गिरावट से भारत की विश्व बाजार में प्रतिद्वंद्विता पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

क्षेत्रीय असमानता

आर्थिक उदारीकरण के चलते भारत ने राज्यों को यह स्वतंत्राता दे दी है कि वे अपने विकास के लिए संसाधन खुद जुटा सकें। इस प्रकार से राज्यों को संसाधन मुहैया कराने की केंद्र की भूमिका में गिरावट आई है। अब राज्य खुद निजी निवेश के लिए होड़ में संलग्न हो गए हैं। बेहतर प्रशासन वाले कुछ राज्यों जैसे कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात और महाराष्ट्र अपने यहां अधिक निवेशों को आकर्षित करने में सफल रहे हैं। लेकिन सवाल यह उठता है कि बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे उन राज्यों का क्या होगा जहां प्रशासन अभी भी बदहाली की स्थिति में है और इस कारण से उदारीकरण के इस दौर में भी निवेशों को आकर्षित नहीं कर पा रहा है।

निजी पूंजी को आकर्षित करने की कुछ राज्यों की इस क्षमता ने बेहतर प्रशासन और बदहाल प्रशासन वाले राज्यों के बीच घोर असमानता पैदा कर दी है। १९८० के दशक में सबसे तेज विकास दर वाले राज्य की दर सबसे कम विकास वाले राज्य से दोगुना थी। १९९० के दशक में एक ओर जहां बिहार जैसे पिछड़े राज्य में विकास दर २.७ फीसदी सालाना थी, वहीं गुजरात की विकास दर ९.६ फीसदी प्रति वर्ष थी। अगर प्रति व्यक्ति विकास दर का आकलन करें, तो राज्यों के बीच यह असमानता की तस्वीर और भयावह दिखाई देगी। पिछड़े राज्यों जैसे मध्य प्रदेश और राजस्थान में १९९० के दशक के दौरान विकास करने की क्षमता प्रति वर्ष ६ फीसदी की दर से भी ज्यादा थी। आर्थिक उदारीकरण के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बदहाल प्रशासन वाले राज्यों जैसे बिहार और उत्तर प्रदेश की हालत में काफी सुधार करना है, जिससे असमानता के कारण राज्यों के बीच विद्वेष की भावना न पैदा हो सके।

४.७.२ बाहरी चुनौतियाँ

अगर भारत में उदारीकरण को सफल होना है, तो उसे विदेशी बाजारों तक अपनी पहुंच बनानी होगी। औद्योगिक देशों में संरक्षणवाद जोरों पर है। वे विकासशील देशों को सस्ते श्रम से उपजे निर्यातों से मिलने वाले फायदों से डरते हैं। विश्व व्यापार संगठन ने वस्त्रा व्यापार के उदारीकरण को सुनिश्चित किया है, लेकिन औद्योगिक देश अभी भी अपने बाजार तक विकासशील देशों की पहुंच कायम करने के कोई संकेत नहीं दे रहे हैं। दूसरे, श्रम और पर्यावरण व्यापार में नए अवरोधों के रूप में उभर रहे हैं जो शुल्क रूपी अवरोध से बुनियादी तौर पर भिन्न हैं। अगर भारत में आयात के उदारीकरण का फायदा विदेशी बाजारों तक भारतीय माल को पहुंचाने में नहीं उठाया गया, तो यह भारतीय व्यापार और भारत में उदारीकरण की सफलता की राह में एक बहुत बड़ा झटका होगा।

वस्त्र

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में मल्टीफाइबर समझौता दोहरे मानदंडों का एक अप्रतिम उदाहरण है। यह देशों के बीच में भेदभाव बरतता है। शुल्क की तुलना में कोटा प्रणाली व्यापार को कहीं ज्यादा हानि पहुंचाती है। व्यापार पर पड़ने वाले खतरों के मामले में कोटा प्रणाली शुल्क की तुलना में कम पारदर्शी है। भारत से निर्यात किए जाने वाले वस्त्रों के खरीदार के रूप में अमेरिका और यूरोपी संघ की हिस्सेदारी ७३ फीसदी है। एक अध्ययन के मुताबिक भारत से वस्त्रा निर्यात के मामले में यूरोपीय संघ की तुलना में अमेरिका ज्यादा प्रतिबंधों को लागू करता है। अगर सिर्फ अमेरिका की बात करें, तो १९९३ की तुलना में अमेरिका ने १९९९ में भारतीय वस्त्रा आयात के मामले में ज्यादा संरक्षणवादी रवैये का परिचय दिया। यूरोपीय संघ के लिए भी यह बात उतनी ही सही थी।

व्यापार और श्रम

भारत की यह आपत्ति कि श्रम मानकों के मामले में निर्णय लेने का अधिकार विश्व व्यापार संगठन की बजाय अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के पास होना चाहिए, बहुत न्यायसंगत है। भारत को इस बात की आशंका है कि व्यापार में श्रम मानक कहीं एक नए अवरोध के रूप में न सामने आ जाएँ। अमीर देशों का तर्क है कि गरीब देशों में काम करने की स्थितियाँ बहुत खराब होती हैं और वहाँ श्रम का मूल्य भी कम होता है। इससे अमीर देशों में बेहतर मेहनताने पर काम कर रहे श्रमिकों को

नुकसान उठाना पड़ता है। उनका यह भी तर्क है कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवनस्तर का अधिकार होना चाहिए।

प्रोफेसर पॉल क्रुगमैन ने इस बात पर जोर दिया है कि व्यापार का आय पर सकारात्मक प्रभाव होता है। औद्योगिक देशों को व्यापार के आधार पर आय में बढ़ोतरी की बात करनी चाहिए, न कि विकासशील देशों पर व्यापार करने की पूर्व शर्त के तौर पर यह दबाव डालना चाहिए कि वे अपने यहां श्रमिकों की अधिक आय सुनिश्चित करें और कार्य स्थितियाँ को बेहतर बनाएँ। क्रुगमैन के तर्क से यह समझ में आता है कि एक निश्चित क्षेत्रा में ही कम वेतन अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता को बढ़ावा दे सकता है। इस प्रकार की प्रतियोगिता से जब निर्यात में बढ़ोतरी होती है और उत्पादन में सुधार होता है, तो इसका सकारात्मक असर उन गरीब देशों पर पड़ता है जहां श्रमिकों को कम वेतन दिया जाता है।

भारत जैसे गरीब देश कम वेतन के आधार पर प्रतियोगिता में फायदा उठा सकते हैं। हालांकि कम वेतन का लक्षण अल्पजीवी ही है चूंकि निर्यात संवर्द्धन से गरीब देशों में वेतन में बढ़ोतरी होगी। पूर्वी एशियाई देशों ताइवान और दक्षिण कोरिया की सफलता की कहानियां इस तर्क की अभिपुष्टि करती हैं। इन देशों में तानाशाही सत्ताओं ने उद्योगों के साथ मिल कर श्रमिकों के अधिकारों का हनन किया। इसके बावजूद वे श्रमिकों के वेतन में बढ़ोतरी पर लगाम नहीं कस सके चूंकि ये देश तब तक निर्यात आधारित व्यापार में अपनी हिस्सेदारी कर उत्पादकता को बढ़ा चुके थे। अमेरिका की आर्थिक नीति के ढांचे में इन आर्थिक अवधारणाओं के लिए अभी भी स्थान है। हालांकि, अगर अमेरिका और यूरोप में श्रमिक संगठन कुछ नौकरियों को बचाने के लिए इस नीति को अपना लेते हैं, तो यह विकासशील और विकसित देशों दोनों के अहित का कारण बनेगा।

श्रमिक अधिकारों में, खासकर महिलाओं और बच्चों के संदर्भ में मानव पूंजी निर्माण में अधिक निवेश की मांग करते हैं। यह बेहतर स्वास्थ्य और शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है। श्रमिक अधिकारों के नाम पर व्यापार प्रतिबंधों को लागू करने के कदम से अमेरिका में उपभोक्ता वस्तुओं के दामों में बढ़ोतरी होगी और इससे भारत जैसे विकासशील देशों में बेरोजगारी को बढ़ावा मिलेगा।

व्यापार और पर्यावरण

भारत ने इस बात पर आपत्ति जताई है कि पर्यावरणीय मानक भी व्यापार के लिए बाधा बन कर उभर सकते हैं। व्यापार में उदारीकरण के फायदे तब तक महसूस नहीं किए जा सकते जब तक अमेरिका में झींगा मछली के निर्यात में भारत की विशेष रुचि कछुए छानने वाली मशीनों की आड़ में छुपी हो। बंगाल की खाड़ी में झींगा पकड़ने वाली मशीन से कछुओं को नुकसान पहुँचता था। चूंकि बंगाल की खाड़ी में कछुओं के जीवन के प्रति अमेरिका संवेदनशील था। दूसरी ओर अमेरिकी उद्योग जायकेदार भारतीय झींगे से मिलने वाली चुनौती से भयभीत थे, इसलिए भारतीय निर्यातों की पड़ताल के लिए पर्यावरणीय मानकों का उपयोग किया गया। अगर व्यापार में पर्यावरणीय सरोकारों को सिर्फ संरक्षणवादी कदमों के रूप में प्रयोग के अतिरिक्त अपनी औचित्यपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है, तो उसे विश्व व्यापार संगठन से तुरंत अलग कर देना चाहिए। एक विशुद्ध वैज्ञानिक और वैश्विक स्तर की किसी पर्यावरण संस्था को इस उद्देश्य से दुनिया को जागृत करना होगा और बताना होगा कि व्यापार से पर्यावरण को होने वाले नुकसान क्या-क्या हैं।

बोध प्रश्न २

नोट : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग करें।

ख) अध्याय के अंत में दिए गए मानक उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

१) विदेशी निवेश, पोर्टफोलियो निवेश और उद्यमी पूंजी के क्षेत्रा में कौन से नीतिगत परिवर्तन किए गए?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

२) देश के अंदर ढांचागत कमियाँ भारत की प्रतिद्वंद्विता को किस तरीके से चोट पहुँचा रही हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

४.८ सारांश

आयात आधारित औद्योगीकरण के रास्ते के चुनाव ने भारत के राजनीतिज्ञों, व्यापारियों और सरकारी अधिकारियों को बंद अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सरकारी कंट्रोल पर आधारित अवसरों को भुनाने का अच्छा मौका दिया। एक संरक्षित बाजार के अंदर सरकारी कंट्रोल का फायदा उठा कर व्यापारियों ने अपनी जेबें भरीं और बदले में नेताओं को फायदा पहुंचाया। इस व्यवस्था ने यथास्थिति के पक्ष में माहौल बनाने का काम किया। एक ओर जहाँ भारत बंद अर्थव्यवस्था के अंदर काम कर रहा था, पूर्वी एशिया के कई देश जैसे दक्षिण कोरिया, ताइवान और चीन निर्यात को बढ़ावा दे रहे थे और तेजी से विकास कर रहे थे। इसी दौरान सोवियत संघ और लातिन अमेरिका में आयात आधारित इकाइयों का भी पतन हो गया।

१९९१ में प्रधानमंत्री नरसिंहराव और डॉ. मनमोहन सिंह ने विदेशी मुद्रा भंडार पर छाए संकट का उपयोग कर राजनीतिक अवरोधों को पीछे धकेलते हुए भारत में उदारीकरण की नींव रखी और भारत का बाजार की ओर रूझान बढ़ाने का काम किया। उदारीकरण के दौरान तेज विकास, निम्न मुद्रास्फीति और निर्यात में बढ़ोतरी हुई। सॉफ्टवेयर, आईटी, आभूषण तथा शोध और विकास के क्षेत्रों में तेजी आई। विदेशी निवेशों की आमद में पहले की तुलना में उछाल आया।

बुरी खबर यह है कि उत्पादकता और प्रतियोगिता की राह में अभी भी कई घरेलू अड़चनें हैं। भारत में भौतिक और ढांचागत व्यवस्था बदहाली की स्थिति में है। सार्वजनिक क्षेत्रा की इकाइयों के निजीकरण के मामलों में आंतरिक नौकरशाही और राजनीतिज्ञों के बीच संघर्ष जाहिर हुए। ये संघर्ष उदारीकरण समर्थक अधिकारियों और दलाली खाने वाले नेताओं के बीच रहा जो यथास्थिति के पक्ष में हैं। भारत का राजकोषीय घाटा इतना बढ़ गया कि वह खतरे की घंटी था। उदारीकरण ने विकास की कई परियोजनाओं को राज्यों के हवाले छोड़ दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि राज्यों के बीच असमानता बढ़ी है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो राष्ट्रीय एकता के खिलाफ जाती है।

भारत के उदारीकरण की राह में अगर बाहरी माहौल उसके खिलाफ रहा तो इससे संरक्षणवाद और प्रतिबंधों को बढ़ावा मिलेगा। विश्व व्यापार संगठन के फैसले के बावजूद मात्राात्मक प्रतिबंध अभी भी वस्त्रा व्यापार पर लागू हैं। अगर विकासशील देशों के संदर्भ में वस्त्रा व्यापार और अन्य उपभोक्ता

वस्तुओं के उदारीकरण में श्रम और पर्यावरणीय मानक अवरोध के रूप में उभरते हैं, तो व्यापार से होने वाले फायदों के तर्क से सहमत होना कठिन है। भारत जैसे विकासशील देश को मुक्त व्यापार शासन की आवश्यकता है जहाँ विश्व के महत्वपूर्ण व्यापारियों को वह करने की आवश्यकता है जिनकी वे शिक्षा देते हैं। भारत के लिए सबसे बेहतरीन बाहरी माहौल ऐसा होना चाहिए जिसमें बहुपक्षीय और नियमबद्ध व्यवस्था हो जहाँ संरक्षणवाद के लिए न्यूनतम स्थान हो।

४.९ कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रणब बर्द्धन, १९८४. *पॉलिटिकल इकानॉमी ऑफ डवेलपमेंट इन इंडिया* (बेसिल ब्लैकवेल, न्यू यॉर्क)।

जगदीश भगवती, १९९३. *इंडिया इन ट्रांजिशन* (क्लैरेंडान प्रेस, १९९३)।

अमित भादुड़ी और दीपक नैयर, १९९६. *दि इंटेलिजेंट पर्सन्स गाइड टु लिबरलाइजेशन* (नई दिल्ली, पेंग्विन)।

ग्लोबल बिजनेस रिव्यू, २००२ (सेज, नई दिल्ली) खंड २, अंक ३ (जुलाई-दिसंबर २००२)।

४.१० बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न १

१) आईएसआई की रणनीति का उद्देश्य तैयार माल के आयात का घरेलू उत्पादन से स्थानांतरण था। इसे घरेलू उद्योगों को बचाने और सशक्त बनाने के उद्देश्य से लागू किया गया था। उच्च सीमा शुल्क से घरेलू बाजार की रक्षा करने तथा लाइसेंस के माध्यम से निजी उद्योगों को बचाने की बातें इसमें शामिल थीं।

२) बाजार की ताकतों से चूंकि सरकारी प्रतिबंधों का विरोध था, इसलिए औद्योगिक घरानों को सरकार से फायदा निकालने के लिए काफी खर्चे उठाने पड़ते थे। नेताओं के चुनावी खर्चों में बढ़ोतरी के साथ ही उनके, उद्योगपतियों और नौकरशाही के बीच आवश्यकता जनित संबंध स्थापित हुए जिससे भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया।

३) नरसिंह राव सरकार ने सुधारों की शुरुआत करने के लिए विदेशी मुद्रा भंडार के संकट का फायदा उठाया। आयातों की आवश्यकता के कारण उद्योग उदारीकरण के कार्यक्रम का विरोध नहीं कर सके। मजदूर संगठनों ने भी आयात के उदारीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश का विरोध नहीं किया।

बोध प्रश्न २

१) १९७३ के विदेशी मुद्रा नियमन कानून में संशोधन विदेशी हिस्सेदारी को ४८ क्षेत्रों में ५१ फीसदी तक बढ़ाने के लिए किया गया। ढांचागत क्षेत्रों जैसे बंदरगाह और सड़क के निर्माण में १०० फीसदी विदेशी हिस्सेदारी को मंजूरी दी गई। इसी तरह उद्यमी पूंजी को मंजूरी देने की प्रक्रिया और करों को उदार बनाया गया। विदेशी संस्थागत निवेशकों को २४ फीसदी हिस्सेदारी की मंजूरी देने, और बाद में ३० फीसदी तक इसे बढ़ाने का फैसला कर पोर्टफोलियो निवेश को भी उदार बनाया गया। हालांकि ये निवेश कंपनी के निदेशक बोर्ड द्वारा मंजूरी पर निर्भर हैं।

२) उद्योगों को बाजार के विस्तारीकरण के लिए यातायात और संचार की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें ऊर्जा संसाधनों की भी जरूरत पड़ती है। इन्हीं क्षेत्रों में क्षमता वृद्धि, न्यूनतम राजनीतिक हस्तक्षेप के द्वारा तकनीक के नवीनीकरण और स्वतंत्रा नियामक अधिकरणों के गठन की आवश्यकता है।